शताब्दी स्मारक ग्रंथमाला - ४

आस्था के स्वर

(कविता-संग्रह)

श्याम विद्यार्थी

प्रकाशक

न्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति

अहमदाबाद-३८० ००६.

प्रकाशक : गुजरात प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति
राष्ट्रभाषा हिन्दी भवन,
एलिसब्रिज,
अहमदाबाद-३८० ००६

प्रथम आवृत्ति १९९९ अक्तूबर २, गाँधी जयती

प्रतियाँ · ७५०

मूल्य : रु. ८०-००

मुद्रक : चिन्तन ग्राफ़िक्स
२-ए, कलाबाग सोसायटी,
मणिनगर, अहमदाबाद-३८० ००८

AASTHA KE SWAR by Shyam Vidhyarthi
Price : 80-00

आस्था के स्वर श्याम विद्यार्थी
मूल्य ८०-००

समर्पण

'पृथ्वी के कण कण मे बिखरी नित नूतन श्री सुषमा है,
किन्तु सुदर्शन मनमोहन बिन वृन्दावन मरुथल दिखता है।'

परमाराध्य पिता
स्व. भीमशंकर औदीच्य 'विद्यार्थी'
की उस पावन स्मृति को समर्पित
जो मेरी जीवन यात्रा के लिए पाथेय बनी है।

○ प्रकाशकीय

भारतीय मनीषा ने कवि और कविता को मानवीय सृष्टि में सर्वोपरि स्थान दिया है और उसे लोक में लोकोत्तरता का केन्द्र माना है। कवि क्रान्तदर्शी होता है। वह सृष्टिकर्ता की सृष्टि के भीतर एक नई सृष्टि करता है जो सृष्टिकर्ता द्वारा निर्मित सृष्टि से उत्कृष्ट तो होती ही है पर वह नियति के नियमो की कर्मबन्धनी शृंखला की जकडनो से मुक्त रहती है। शुक्ल यजुर्वेदान्तर्गत ईशावास्योपनिषद मे ईश के साथ कवि शब्द को सम्पृक्त कर कहा गया है -

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविर शुद्धमपापविद्धम् । कविर्मनीषी परिभू. स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्य: समाभ्य: ॥८॥

कवि सब कुछ देखता है, निरखता है। उसकी दृष्टि व्यापक है, शुभ्र है, अपार्थिव है, आक्षरिक है, अक्षत है, स्नायुरहित है, पवित्र है, निर्मल है, तटस्थ है। वह मन पर शासन करता है, वह सर्वोपरि है, सर्वतत्रस्वतत्र है। वह शाश्वती सृष्टि को यथोचित रुप में आकार देता है। वह अनत काल के लिए अपनी सृष्टि को तथ्यपूर्ण रुप में प्रस्थापित करता है। उसे जो रुचता है, जैसा रुचता है वैसे ही उसकी निर्मिति मूर्तिमती बनती जाती है। कवि की दृष्टि मे जागतिक अनुभवो के दोहन से प्राप्त दुग्ध ही मनीषा के पात्र मे दधि मे रुपान्तरित होकर समय की मथानी से मथितावस्था मे नवनीत बन जाता है। एवंविध प्राप्त नवनीत ही शब्दो की ऑच में पककर सुकृति-घृत के रुप मे प्रस्तुत होता है जो देश कालावच्छिन्न होकर मानवता का रिक्थ बन जाता है। कविता किसी एक की नही, किसी काल विशेष की नही, वह सबकी है, उसमे

सब है। कालातीत कविता ही आत्मा की अमर कला है। इस अमरकला को भवभूति 'अमृता आत्मन कला' कहकर वन्दना करते है।

श्याम विद्यार्थी प्रकृत्या कविता की पवित्रता, निर्मलता और उदात्तता के उपासक है। उनका कवि दर्भकुशपवित्रपाणि होकर कविता के अनुष्ठान मे जुड जाता है। उनकी सर्वतोभद्रमुखी कविता सब को समेट लेती है - **'सब को समेटे वक्षः स्थल मे सिन्धु की अंगडाई है।'** कविता का याथातथ्य दोनो मे हे - वह सकट की तीक्ष्णचुभन है तो सुमन का सुभग सस्पर्श भी है। उसमे चन्द्रमा की हँसी है तो नयनों की जलधारा भी है। 'एक खुली डायरी' मे कविता के सभी पार्श्वों और सामग्री को अजुलि में आचमनार्थ कवि ने समुपस्थित कर दिया है।

विद्यार्थी जी ने प्राय कविता के फूलों को एकान्त के शान्त बगीचे से चुन-चुन कर अपनी आस्थाओ के स्वरो मे पिरोया है। देश के प्रति आस्था आज जब तिरोहित होती रही है तो कवि 'स्वर्ण विहग' मे इस लौ को दीप्त करने की बलवती निष्ठा का स्नेहदान करता है। अपने इस स्वर्णविहग को आज के पश्चिमाभिमुखी गगन मे जब फैशन परस्ती का श्येन दबोच रहा है तो उसे मुक्त करने का सर्वकष अनुरोध करता है कवि - 'लौटा दो फिर काल देव तुम, यही चाहता है मन मेरा।' इसी शृखला मे 'कल का प्रखर सूरज', 'मॉ का ऋण', 'विश्वबन्धु', 'ज्योतिर्मयी सस्कृति' कविताऍ हैं जो भारत और भारतीयता की ज्योति जलाए हुए है। कवि अपनी संस्कृति के उद्‌गाता मूरियो को नतमस्तक प्रणाम करता हुआ कविता के सातत्य की ओर सकेत करता हे - 'हे काव्यकल्नाधर' में तुलसी, 'सस्कृति के सच्चे चित्रकार' में श्री मैथिलीशरण गुप्त की ओर। ये दोनो कवि मानवता के पुजारी रहे है। दोनो ने ही समाज की वेदना पहचानी थी और उसका निदान भी किया था। तुलसी ने जीवन-सघर्ष का गरल पीकर जग को अमृत दिया तो गुप्त जी ने पराधीन कुठित भू-मन मे स्वातत्र्य के बीज बोये हैं।

श्याम विद्यार्थी जहॉ मानव की उदात्तता और उत्कृष्टता के उद्‌गाता हे वहॉ वे पौरुष के स्वरो से मुखर भी है। वे जहॉ कही भी मानवमूल्यो का क्षरण

देखते है वहाँ उनका परिभू कठोर बन जाता है और दानवता को धिक्कारने लगता है ।

उसके ऊँचे अह शृंग को,
अभिवादन करने को
उसके मिथ्या गौरव का
ध्वज फहराने को
अत्याचार, अनाचारो के
शिखरो पर
करता आरोहण,
इसीलिए तू,
द्वेष, ईर्ष्या, हिंसा,
झूठ, कपट पाखंड
कटुता, निर्दयता, शोषण के
तीक्ष्ण शरो से
मानवता को
क्षत विक्षत कर
स्थापित करता
दानवता का शासन ।

'राष्ट्रपोत' बड़ी गहरी कविता है । इसमे वीररस की धारा मन को उत्साहित करती है । इस प्रतीक के माध्यम से राष्ट्र के कर्णधारों को चेतावनी और प्रेरणा देता हे कवि । अनेक कठिनाइयो के बीच भी पोतचालक को तो 'ज्ञान, कर्म का मर्म समझकर, आत्मशक्ति पर, निर्भर रहकर, निर्भ्रान्त भाव मे, अव्याहत गति से आगे बढते रहना है ।'

श्याम विद्यार्थी ने जहाँ सकटो, विपत्तियो, मूल्यक्षरणो की बात की है वहाँ उनका सामना करने के लिए बल ओर पौरुष का भी ऊर्जस्वी आह्वान किया है । कुछ कविताएँ आत्मज्ञान की ओर भी प्रेरित करती है । 'विश्वात्मन', 'निजदर्शन', 'विस्थापन' आदि कविताएँ तत्त्वज्ञान की भूमि पर अवस्थित है ।

राष्ट्रभाषा हिन्दी को लेकर तीन सुन्दर कविताएँ है । ये हिन्दी की महत्ता और व्यापकता को रेखांकित करती है ।

श्याम विद्यार्थी ने बडे सुन्दर गीत रचे है । उनके गीतों मे शब्द, और भावो का अद्भुत सगम हुआ है । उनका एक-एक गीत मन की मृदु भूमि पर अंकित सनातन भावो का अभिलेख है । वे पूरे रससिद्ध कवि है । शब्दो की गहरी पहचान है उन्हे । उनके शब्द भावो के साथ ऐसी यात्रा करते है कि मंजिल भी मिलती है और रास्ता भी सुगम हो जाता है । लय और ताल का सुष्ठु समन्वय हुआ है इनमे । भावो और शब्दों के बोलते चित्र सभी जनो को कविता की ओर आकर्षित करने में समर्थ है ।

गुजरात प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति को अपने हीरक जयन्ती वर्ष के अन्तर्गत गुजरात में रची और लिखी गई कविताओं को प्रकाशित करने की योजना के अन्तर्गत सुकवि श्री श्याम विद्यार्थी जी ने जिस निर्व्याजभाव से 'आस्था के स्वर' को समिति को प्रकाशित करने के लिए दिया उससे समिति गौरवान्वित हुई है । समिति उनका ऋण स्वीकारती है ।

समिति के प्रकाशन कार्य में डॉ नवनीत गोस्वामी ने बड़ी निष्ठा से, श्रद्धा से सहायता प्रदान की है । वे समिति के सुदृढ स्तभ है । आगे भी समिति उनकी सहायता से अपनी योजना को आगे बढाती रहेगी । समिति के मत्री-सचालक श्री अरविन्द जोशी ने प्रकाशन योजना को प्रोत्साहन दिया है । गुजरात की हिन्दी प्रेमी जनता, आशा है, समिति इस प्रवृत्ति का स्वागत करेगी ।

- रघुनाथ भट्ट
कोषाध्यक्ष
गुजरात प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति

गॉधी जयन्ती
२-१०-९९

आत्मकथ्य

मेरे कोमल हृदय में कविता का अंकुर कब और कैसे फूटा, ठीक ठीक याद नही ! हाँ, इतना अवश्य याद आता है कि सबसे पहली कविता मैने लगभग तेरह वर्ष की आयु में अपने देवतुल्य बाबा के निधन पर हृदयोद्गार व्यक्त करते हुए लिखी थी । उसके बाद दूसरी प्रमुख कविता राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के देहावसान पर श्रद्धा सुमन समर्पित करते हुए लिखी थी । उस समय मै बारहवी कक्षा का छात्र था । इस प्रकार मेरी काव्य चेतना का उन्मेष वेदना की गोद में हुआ । काव्य संस्कार के विकास में मेरे पारिवारिक परिवेश का भी महत्वपूर्ण स्थान रहा है । अप्रतिम तेजस्वी बाबा स्व. ओंकारनाथ, प्रखर अद्वैत वेदान्ती नाना स्व यदुनन्दन प्रसाद, साहित्यानुरागी एवं स्थितप्रज्ञ पिता स्व. भीमशकर औदीच्य, श्रेष्ठ कवि चाचा श्रीकृष्ण औदीच्य तथा मेरी जन्मदात्री माँ शकुन्तला देवी ने अपने महनीय व्यक्तित्व की ऊष्मा से मेरी काव्यचेतना को सम्पोषित किया । छात्र जीवन में श्रध्देय गुरुजनो के प्रोत्साहन एव मार्गदर्शन से भी बल मिला ।

उत्तरप्रदेश के फर्रुखाबाद जिले से बी ए. करने के उपरान्त जब मै विश्वविद्यालय में एम. ए. की शिक्षा प्राप्त करने हेतु इलाहाबाद गया तो वहाँ की अत्यन्त उर्वर सृजन भूमि ने मेरी काव्यचेतना को असीम ऊर्जा प्रदान की । विशेष रूप से छायावाद के प्रमुख स्तंभ कविवर सुमित्रानन्दन पन्त तथा अनुगीत प्रवर्तक गुरुवर डॉ. मोहन अवस्थी से प्राप्त स्नेह तथा दिशा-निर्देश ने प्रत्यक्ष- अप्रत्यक्ष रूप से मेरी रचनाधर्मिता को उत्प्रेरित एवं स्फूर्त किया । उनके कृपाभाव के प्रति चिर कृतज्ञ हूँ ।

प्रस्तुत काव्य सग्रह मे अधिकांशत मेरी किशोरावस्था की रचनाएँ है । इससे पूर्व मेरा पहला कविता सग्रह 'आत्मज शब्द' प्रकाशित हुआ है जिसमे आयु के हिसाब से प्रौढावस्था की रचनाएँ है । प्रकाशन की बात छोड़ दे तो लेखन के स्तर पर 'आस्था के स्वर' को ही पाठक मेरा पहला सग्रह मान सकते है, हालॉकि वह 'आत्मज शब्द' के बाद पाठको के सामने आया है । काव्य सृजन की दृष्टि से मै किशोरावस्था को विशेष रूप से महत्वपूर्ण मानता हूँ । उस काल के भावोन्मेष में सहजता का प्राधान्य रहता है । प्रतिभा कलिका का नैसर्गिक रूप से प्रस्फुटन होता है । कवि का हृदय बाल विहग की तरह मधुर-

मधुर कलरव करता है। तत्कालीन रचनाओं मे किसलय का मार्दव होता है। बाद की प्रौढ रचनाओं में तो किसलय की कोमलता का स्थान पत्र की प्रखरता ले लेती है। इसका यह तात्पर्य नही है कि प्रखरता मे सौन्दर्य नही होता है, परन्तु स्वरूप वैशिष्ट्य की दृष्टि से तो निश्चित रूप से अन्तर होता है। यह अन्तर अनुभूतिगम्य है।

इस संग्रह की अनेक कविताएँ देश की प्रमुख पत्रिकाओं मे प्रकाशित हो चुकी है। उल्लेख्य पत्रिकाएँ हैं - 'मधुमती' (राजस्थान साहित्य अकादमी), 'हरिगन्धा' (हरियाणा साहित्य अकादमी), 'राष्ट्रभाषा'(राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा) 'गुर्जर राष्ट्रवीणा' (गुजरात प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, अहमदाबाद), 'सुजस'(सूचना एवं जन सम्पर्क निदेशालय, राजस्थान), 'बात सामयिकी' (कलकत्ता), 'काव्यायनी' (राँची) तथा 'तुलसी मानस भारती' (भोपाल) इत्यादि।

अपने काव्य सग्रह के प्रकाशन के प्रति मैं प्रारंभ से ही उदासीन रहा हूँ, कारण एक नही अनेक हैं। खैर! अब यह संग्रह पाठकों के समक्ष है। मेरी कविताओं के न जाने कितने सहृदय पाठक कब से संग्रह रूप में उनके प्रकाशन हेतु मुझ पर दबाव डालते रहे है। मै जानता हूँ कि मेरे इस काव्य संग्रह को देखकर उन्हें मुझ से भी अधिक प्रसन्नता होगी। यह भी एक सुखद सयोग है कि इस संग्रह का प्रकाशन गुजरात प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, अहमदाबाद के सौजन्य से समिति के सस्थापक तथा गुजरात मे हिन्दी प्रचार के भीष्मपितामह स्व. जेठालाल जोषी के जन्म शताब्दी वर्ष में हो रहा है। काव्य कृति के रूप में यह श्रद्धा सुमन गुर्जर राष्ट्रवीणा हिन्दी के उस अमर वादक की पावन स्मृति को समर्पित है। गुजरात प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति तथा स्व जेठालाल जोषी जन्म शताब्दी महोत्सव समिति से सम्बद्ध वे सभी महानुभाव साधुवाद के पात्र हैं जिन्हाने सग्रह के प्रकाशन मे सक्रिय भूमिका निभाकर मेरी रचनाशीलता को स्नेह एव आदर दिया। मैं विशेषत आभारी हूँ महोत्सव समिति के सयोजक आचार्य प्रवर रघुनाथ भट्ट एव राष्ट्रभाषा महाविद्यालय के प्राचार्य डॉ नवनीत गोस्वामी का जिन्होने अपने प्रबल स्नेहाग्रह से प्रकाशन के सन्दर्भ में मेरी उदासीनता को तोड़ा और अन्ततोगत्वा 'आस्था के स्वर' को रूपायित किया।

श्याम विद्यार्थी

□ अनुक्रम

एक खुली डायरी

कविता -
कवि जीवन की
एक खुली डायरी है
जिसके हर पृष्ठ पर अंकित
कवि मन की चिन्ता, पीड़ा
उर की गहराई है।
कविता-
मानस के द्वार पर
कल्पना रंगोली रच
अन्त. सगीत से
परिवेश झंकृत कर
शब्द शतमुख से दी गई
भाव को बधाई है।
कविता-
तीक्ष्ण कंटक की चुभन हो
सुभग सुमन स्पर्श हो
चन्द्रिका समान हास राशि हो
अनवरत अश्रु जलधार हो
सबको समेटे वक्ष स्थल में
सिन्धु की अंगड़ाई है।
कविता-
जीवन मरुभूमि मे
अधड़ बवंडर बीच
जलती चट्टानों पर पैर धरे
मानव के
शापित, तापित मन
प्रशमन हित
सघन अमराई है।

*

स्वर्ण विहग

स्वर्णाभा से अनुरंजित महिमान्वित
कैसा था दिव्य अतीत हमारा !
सुख समृद्धि मंडित वैभवमय
कैसा था भव्य अतीत हमारा !

मानवता का अर्चन वन्दन अभिनन्दन
था जीवन साध्य हमारा ।
पृथ्वी से हो दानवता उच्छेदन
एकमात्र था लक्ष्य हमारा ।

धर्म ज्योति से भारत भू का
कण कण जगमग रहता था ।
धर्म नही ग्रन्थों तक सीमित
जीवन निर्देशन करता था ।

अधोमुखी पथ विचलित जन को
ऊर्ध्वोन्मुख करता था ।
मात्र अभ्युदय नही धरा पर
नि·श्रेयस भी सिद्ध किया करता था ।

चारों ओर मनुजता का ही
विजय घोष होता था ।
नीतिपरक वचनों मे जीवन
अनुशासित होता था ।

दया शील करुणा मृदुता से
मानव उर पूरित रहता था ।
परहित प्राणों की आहुति से
जीवन मख शोभित रहता था '

शूरों की यह भूमि विलक्षण
स्वाभिमान स्वाभाविक गुण था ।
कर देते सर्वस्व निछावर
वह शूरत्व अनोखा था ।

वे रणकौशल में पारंगत
रण प्रांगण ही क्रीडास्थल था ।
राणा और शिवा जैसों का
रण चातुर्य निराला था ।

वे शीलवान वे तपोनिष्ठ
वे कर्मवीर, धर्मात्मा थे ।
पुरुषार्थ समर्पित तन उनका
वे मनसा परमार्थी थे ।

वे तपबल से ही दुष्ट जनों का
दमन किया करते थे ।
वे सत् प्रकाश से अन्ध तमस को
दूर किया करते थे ।

कोना कोना गुंजित रहता
पावन मन्त्रोच्चारण से ।
शोभामय था देश हमारा
यज्ञ तपादिक शृंगारों से ।

खूब फली फूली थी संस्कृति
उज्ज्वल दिव्य अनुष्ठानों से ।
मानव जीवन पूर्ण बना था ।
भूताध्यात्म समन्वय में ।

नालन्दा औ' तक्षशिला के
इन टूटे पाषाणो मे,
छिपी पड़ी है ज्ञान सपदा
धूल धूसरित अवशेषों मे ।

बड़े बडे ज्ञानी रहते थे
नतमस्तक इनके मान में,
आँसू की दो बूँदें ही अब
तत्पर स्वागत गान में ।

उस अतीत में स्वर्ण विहग सा
देश कहा जाता मेरा,
उसका वह वैभव वह गौरव
क्यों नहीं रहा होकर मेरा ?

जग आँगन में मधुर मधुर
कलरव करता था खग मेरा ।
हाय कौन-सा क्रूर श्येन
ले गया छीन पछी मेरा ।

उसके तेजस्वी स्वरूप को
करता प्रणाम मन मेरा ।
उसके मनहर सुन्दर आनन
हित चकोर मन मेरा ।

कहाँ गया बल रूप तेज वह
यही खोजता मन मेरा,
लौटा दो फिर कालदेव तुम
यही चाहता मन मेरा ।

*

कल का प्रखर सूरज

आज, कल का प्रखर सूरज
क्यों मलिन है हो रहा ?
क्यों दिवाकर दिव्य रथ
अवरुद्ध अब है हो रहा ?

क्यों न उसका विमल मस्तक
अब ऊर्ध्वगामी हो रहा ?
ओ बता दे काल तू ही
कौन ग्रह है चल रहा ?

जननि उसकी आज क्यों
आँचल पसारे रो रही ?
मोहिनी छबि आज उसकी
क्यों बदलती जा रही ?

क्यों व्यथित कृशगात वह
करुण क्रंदन कर रही ?
क्यों सुतों से आज वह
अवहेलना है पा रही ?

क्यों अतीत सुवर्णमय अब
धूल में है मिल रहा ?
क्यों न उसके सद्‌गुणों का
मूल्य आँका जा रहा ?

क्यों शिवाश्रित मान्यताएँ
अब भुलाई जा रहीं ?
क्यों प्रगति मिस पतन की
कीर्ति गाई जा रही ?

इस समय पश्चिम प्रभंजन
चहुं ओर गर्जन कर रहा,
प्रबल अधड़ वेग सम्मुख
हर शीश झुकता जा रहा ।

उस अटल वट वृक्ष की भी
जड़ें हिलती जा रही,
इसलिए ही पूर्व सस्कृति वल्लरी
मुँह छुपाए रो रही ।

क्षणिक सुख की प्राप्ति में ही
विकल नर है हो रहा,
फिर भयावह अन्त से वह
सिर पटकता रो रहा ।

आज पावन धर्म तो
उपहास साधन बन गया,
देदीप्यमान स्वरूप उसका
लुप्त जैसे हो गया ।

मनुजता का भव्य अनुपम
शृंगार जग से मिट गया,
बिन मुकुट सम्राट का
भाल जैसे रह गया

क्यो न मूलाधार पर
जीवन टिकाया जा रहा ?
क्यों नयन में भ्रान्ति का
घर बसाया जा रहा ?

आज वीणापाणि का भी
हा निरादर हो रहा,
अर्थ दलदल में उसे
कैसा धँसाया जा रहा !

ज्ञान दिनकर पर सघन
घन मेघ छाता जा रहा,
शारदा माँ का उपासक
छात्र निर्धन रो रहा।

आज निर्धन वर्ग तो
नित और निर्धन हो रहा,
निष्करुण शोषक वर्ग का
अधिकार बढ़ता जा रहा।

निर्धनो का इस जगत से
स्वत्व उठता जा रहा
क्योकि धनिकों का विपुल
साम्राज्य छाता जा रहा।

जानते हैं हम कि केवल
चक्र रथ का चल रहा,
पर नहीं यह जानते हैं
किस दिशा को जा रहा।

हाथ मे वल्गा लिए दायित्व की
सारथी ही दिग्भ्रमित है हो रहा,
लक्ष्य उन्मुख अश्व भी
पथभ्रष्ट होता जा रहा ।

हा ! जगद्‌गुरु ज्ञानदाता
क्यों अधिक है सो रहा ?
क्यो निशा की कालिमा में
कान्ति अपनी खो रहा ?

क्यों नही तू जागरण का
गीत अभिनव गा रहा ?
क्यों नहीं तू छोड़ निद्रा
पांचजन्य बजा रहा ?

*

माँ का ऋण

आज माँ का ऋण चुकाने का समय है आ गया,
आज जीवन सफल करने का सुअवसर आ गया,
आज माँ के मान का प्रश्न सम्मुख आ गया,
आज जीवन के समर्पण का विरल क्षण आ गया।

उधर देखो माँ सदेशा बलिदान का है दे रही,
धन्य अपने भाग्य है जो वह बुलावा दे रही,
दिव्य उसके वदन पर है कान्ति विलसित हो रही,
शान्ति की उस मूर्ति पर क्रान्ति जगमग हो रही।

माँ प्रतीक्षा में खड़ी कबसे हमारे द्वार पर,
कर रही विश्वास निश्छल वीर निज सतान पर,
हो रही अति गर्विता रणबाँकुरों की आन पर,
दे रही स्नेह आशिष उनको विजय अभियान पर।

माँ तुम्हारे रुदन को हम सहन कर सकते नही,
कर्तव्य पथ से लाल तेरे विमुख हो सकते नही,
माँ तुम्हारी शान का अपमान सह सकते नहीं,
समर भू से हम कभी मुख मोड़ सकते हैं नही।

जानते है पुत्र तेरे शत्रु के छक्के छुड़ाना,
जानते है शीश अपना चरण में तेरे चढ़ाना

सीखा उन्होंने है हिमालय से सदा ऊँचे रहो,
सीखा उन्होंने सिन्धु से गभीर जीवन मे रहो,
सीखा उन्होने जान्हवी से दूर कल्मष से रहो,
सीखा उन्होंने चट्टान से दुर्भेद्य बनकर के रहो ।

माना घाटाएँ राक्षसी वीर पथ बाधक बनेगी,
माना हवाएँ तमतमाती अग्नि की वर्षा करेगी,
माना दिशाएँ मायाविनी भ्रमजाल फैलाती रहेंगी,
माना बलाएँ सर्पिणी सी विषवमन करती रहेंगी ।

घनघोर सकट विकट नर्तन रात दिन करते रहेंगे,
पर मातृभू के भक्त अविचल अर्चना करते रहेगे,
जो निशाचर वे तमस से दुसन्धि करते ही रहेंगे,
पर ज्योति आराधक दिवाकर वन्दना करते रहेगे ।

हे काव्य कलाधर

आज धरा पर हुआ प्रस्फुटित
ऐसा सुमन मनोहर था,
जिसकी पावन दिव्य गन्ध से
युग मन परम प्रहर्षित था।

काले काले मेघो से जब
भारत नभ आक्रान्त हुआ,
तब ज्योति कलश ले कवि तुलसी
सास्कृतिक सूर्य सा प्रकट हुआ।

हुआ उल्लसित वसुधा का उर
तुलसी जैसा सुत पाकर,
जिसने उसका मान बढ़ाया
सृजन ध्वजा फहरा कर।

भारत भू पर नर्तन रत थी
क्रूर पिशाचिनि दानवता,
राम नाम के महा अस्त्र से
रक्षित की तुमने मानवता।

जब किंकर्तव्यविमूढ़ मनीषा
अध तमस में भटक रही थी,
उसको प्रकाश पथ पर लाने को
तब कवि प्रतिभा सजग रही थी।

भग्न हृदय कुंठित जन मन ने
जब कोई सबल ना पाया,
भारत माँ का अमर लाल यह
भक्ति संदेशा तब लाया।

शैव वैष्णव अगुण सगुण मे
द्वन्द्व भाव जब तीव्र हुआ,
एकत्व निरूपण करने को तब
कवि संगम पर खड़ा हुआ ।

भौतिकता निमग्न जो मानस
द्वेषानल विदग्ध रहता था,
सीयराममय देख जगत वह
प्रेम भाव पूरित रहता था ।

होती थी जब गिरा व्यथित अति
प्राकृत जन गुण गायन सुनकर,
तुमने उसको सुख पहुँचाया
रामचरित रचना प्रस्तुत कर ।

तुमने समाज के अन्तर्मन की
व्यथा, वेदना पहचानी,
उसके विकास के पद चापो की
असली गति तुमने जानी।

निज जीवन सघर्ष गरल पी
तुमने जग को अमृत दिया,
कर्दम भरे हुए जग में रह
तुमने युग को कमल दिया ।

हे भक्त प्रवर, हे काव्य कलाधर
तुमने जीवन को सच्चा अर्थ दिया,
सत्यं शिवं सुदरं से भूषित कर
तुमने कविता को अमर कर दिया।

*

संस्कृति के सच्चे चित्रकार

विधिना क्यों तूने इतना उत्पात मचा रखा ?
क्यों सृजन धरा पर हाहाकार मचा रखा ?
पुण्य भूमि के नररत्नों को क्यो हमसे है छीन रहा ?
चिर वियोग की भीषण ज्वाला में क्यों हमको जला रहा ?

जन जन के नेत्रों से अश्रुधार क्यों प्रवहमान है ?
अवनि और अम्बर इतना क्यों शोकमग्न है ?
आज भारत भू क्यों इतनी श्रान्त क्लान्त है ?
क्यो राष्ट्र चेतना वाणी हिन्दी नीरव प्रशान्त है ?

रो रही आज भारत माता उसका प्रिय सेवक चला गया,
रो रही आज भाषा हिन्दी उसका प्यारा सुत चला गया,
रो रहा आज आत्मीय स्वजन स्नेही दद्दा चला गया,
रो रहा आज साहित्य जगत सम्मान्य राष्ट्रकवि चला गया ।

है सदा अमर 'साकेत' उर्मिला युग युग तक जीवित है,
'यशोधरा' है व्याकुल क्योंकि गौतम है चला गया,
भारत उर मे दिव्य 'भारती' सदा सदा गुंजित है,
'द्वापर' का हर पृष्ठ रो रहा क्यो कि कृष्ण है चला गया ।

उस 'किसान' की हृदय तरंगे तुम्हें पुकार रही है,
'गुरुकुल' की गरिमा गाथाएँ तुम्हें पुकार रही है,
'जय भारत' की जटिल गुत्थियाँ तुम्हें पुकार रही है,
'पचवटी' की हरित भरित लतिकाएँ तुम्हें पुकार रही है ।

नही भुलायी जा सकती वे अमर तुम्हारी कृतियाँ,
जिनमें भरे पड़े जीवनादर्श पर हित सुख विधियाँ,
तुमने भूत भविष्यत् वर्तमान की सयोजित की कड़ियाँ,
तुमने राष्ट्र चेतना शृगारित करने को खोजी सस्कृति की लड़ियाँ ।

तुमने भारत मन के ऊर्ध्व सचरण हित आदर्श बताए,
अस्मिताहीन तममय समाज मे निज गौरव के दीप जलाए,
तुमने निद्रालस निमग्न जन को जागृति के गीत सुनाए,
पराधीन कुठित भू मन में स्वातत्र्य बीज बिखराए ।

उत्साहहीन अवनत समाज को तुमने सदा सचेत किया,
उसकी शुष्क धमनियों मे प्रेरणा रुधिर सचार किया,
स्वर्णिम अतीत के दर्पण में तुमने उस का मुख दिखलाया,
वह क्लैव्य, दैन्य छोड़े तुमने गीता संदेश सुनाया ।

पाला सदा साधु व्रत तुमने सादा जीवन उच्च विचार,
परम सौम्यता चरम शिष्टता तव जीवन के अलंकार,
हे वैष्णव जन, हे तपोनिष्ठ, सस्कृति के सच्चे चित्रकार,
हे रामराज्य के उद्गाता, तुमने फैलाए सद्विचार ।

*

हे स्वातंत्र्य दिवस

भारत माँ के
अमर सपूतों की
आत्माहुति
त्याग तपस्या
बलिदानों के
आमंत्रण से आने वाले
हे स्वातंत्र्य दिवस !
शत शत बार बधाई तुमको ।
गहन तमिस्रा
घोर निराशा
दुश्चिन्तामय
भारत नभ में
आशा दीप
जलाने वाले
हे स्वातंत्र्य दिवस
शत शत बार बधाई तुमको ।
मोदवंचिता
शोकस्नाता
अश्रुपूरिता भारत माँ को
आनन्दामृत
पान कराने वाले
हे स्वातंत्र्य दिवस
शत शत बार बधाई तुमको ।
भेदभाव
वैषम्य

न्यायपरक समतामूलक
शोषणविहीन
भारत समाज की
रचना को संकल्पित
हे स्वातंत्र्य दिवस
शत शत बार बधाई तुमको ।
विश्व सिन्धु में
वड़वानल की
भीषण लपटो
झंझा तूफानों
प्रचंड झोंकों में
निर्बाध संचरित
राष्ट्रपोत के सूत्रधार
हे स्वातत्र्य दिवस
शत शत बार बधाई तुमको ।

*

हे राष्ट्रपोत !

विश्व महोदधि के
महा विकट, भैरव
झंझा तूफानो में
निर्द्वन्द्व संचरणशील,
प्रेम शान्ति करुणा
मानवता के उद्‌गाता,
भयमुक्त, स्वतत्रमना
हे राष्ट्रपोत !
तुम कुटिल जटिल लहरो के
भँवर जाल में फँस
दिग्भ्रान्त कही मत हो जाना ।
वडवानल की
भूखी, भीषण लपटें
नेत्रो से ज्वाला बरसाती
सत्वर तुमको
निज मुख का
ग्रास बनाना चाहेगी,
उद्धत, क्रूर, कुटिल
फन फैलाये व्यालो-सी
वे प्रलयकारी लहरे,
विषाक्त फूत्कारों से
तीखे दंशन से
तुम्हे भयाक्रान्त करना चाहेंगी,
काली काली घनघोर घटाएँ
नभ मडल को आच्छादित कर

अमा निशा के
गहनान्धकार से
मार्ग तुम्हारा भर देना चाहेगी,
वे मात्स्य न्याय विश्वासी
मदमत्त भूधराकार
मगर मच्छ,
अपने भौतिक बल से
तुम्हे प्रकम्पित करना चाहेंगे,
वचक, विद्वेषी, षडयन्त्री
जाने कितने जलयान तुम्हें,
मायावी, कुत्सित चालो से
पथ विचलित करना चाहेंगे,
नूतनतम शस्त्रों के द्वारा
हिसा का ताडव नर्तन कर
बर्बर दस्यु, लुटेरे, अपहर्ता
तुमको आतकित करना चाहेंगे।
है स्वधर्म प्रतिबद्ध पथिक
ये तो पथ की बाधाएँ है, चुनौतियाँ है,
धर्मक्षेत्र इस कुरुक्षेत्र में
सद् विवेक, सकल्प, शक्ति
संयम, दृढ़ता से तुमको
उनका सदा सामना करना है,
ज्ञान, कर्म का
मर्म समझ कर
आत्म शक्ति पर निर्भर रह कर
तुमको निभ्रान्त भाव
अव्याहत गति से
आगे बढ़ते ही रहना है

विश्व बन्धु

विश्व बन्धु मेरा यह देश शान्ति पथ अनुगामी है,
सत्य अहिसा करुणा के सिद्धान्तों का प्रेमी है,
महावीर गौतम गॉधी के वचनो का अनुयायी है,
सकल विश्व में विमल प्रेम का अभिलाषी है ।

इसने सदा शान्ति पथ पर ही चलना सीखा,
देश देश के हर मानव को गले लगाना सीखा,
किन्तु आततायी के सम्मुख कभी न झुकना सीखा,
न्याय और मानवता के हित लडना भी उसने सीखा ।

शान्तिदूत यह, पर कायर भयभीत रणविमुख नही है,
निज कर्तव्य धर्म के प्रति कटिबद्ध सदा तत्पर है,
मानव मूल्यों की रक्षा उनके प्रसार हित सकल्पित है,
जीवन का मीमासक मर्मज्ञाता स्वधर्म प्रतिश्रुत है ।

युग युग से यह औदार्य धैर्य का परिचायक है,
मानव की गरिमा महिमा का स्थापक गायक है,
पर भीषण वात्याचक्रों में निज गौरव का भी रक्षक है,
यह तम राक्षस का महाशत्रु संहारक दिनकर है ।

*

ज्योतिर्मयी संस्कृति

जिस देदीप्यमान सस्कृति के गौरव का गायन
समस्त भू मंडल मे गुजित होता था,
जिसकी दिव्य आभा से कण कण दीपित था
वह थी भारत की ज्योतिर्मयी सस्कृति ।
जिधर देखो उधर प्रशस्त भाल भारत का
तेज तप्त रश्मि जाल करता विकीर्ण था,
जिसमें था चरम उत्कर्ष मानवता का
वह थी भारत की भव्य आर्य सस्कृति ।

पूर्व में पश्चिम में और उत्तर-दक्षिण मे
भारत का आत्मवाद मुखरित होता था,
ज्ञान और तप के अद्भुत पराक्रम से
भारत चतुर्दिक मे भरता हुकार था ।
त्याग बलिदान के सशक्त मेरुदण्ड पर
भारतीय जीवन विधान अवलबित था,
धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों स्तंभो पर
भारत का सांस्कृतिक भवन आधारित था ।

राम और कृष्ण की दिव्य कर्मभूमि पर
राणा और शिवा की पूज्य मातृभूमि पर,
कराल अस्त्र-शस्त्र ले विपत्तियॉ आई
भस्मीभूत करने हेतु भारत की सस्कृति को ।
अनेकानेक महायुद्ध हुए इस भूमि पर
हँसते हसते वीरों ने प्राणों की आहुति दी

जननी जन्मभूमि का मस्तक न झुकने दिया
पग पग पर शत्रु को धूल चटा दी ।

धर्मगुरु धर्मप्राण भारत जगतीतल में
दिव्य धर्म ज्योति का करता प्रसार था,
करुणा उदारता की सूक्ष्म भावभूमि पर
सर्व भूत हित में रहता तल्लीन था ।
महाज्ञानी महाध्यानी ऋषि मुनि इस धरती के
समाज उन्नयन हेतु रहते सचेष्ट थे,
विस्तृत धरा के अंधकार भरे कोनों मे
ज्ञान मार्तण्ड का प्रकाश पहुँचाते थे ।

घोर विश्वारण्य के विशालकाय गह्वर मे
महाबली भारत सिंह करता निवास था,
वीर ही नही अति धीर गभीर वह
प्रतिक्षण स्वसाधना में रहता ध्यानस्थ था ।
जीवन में सत्य शिव सुन्दर प्रतिष्ठापक
मानव की गरिमा का सदा पक्षधर था,
अपने व्यक्तित्व से जग को सम्मोहित कर
कीर्ति मन्दाकिनी में करता अवगाहन था ।

*

सर्वोत्तम कृति

कोमलता
करुणा
स्नेह की प्रतिमा
नारी,
ईश्वरविरचित संस्कृति की
सर्वोत्तम कृति है ।
नर की
कटुता, पशुता को
उसकी कठोरता, बर्बरता को
मृदुता और मानवता में
परिवर्तन कर देने में सक्षम
नारी,
नर से महान है ।
क्षीर सिन्धुवासिनि लक्ष्मी की
ललित सुघरिमा,
विद्या सुधा प्रदायिनि ब्रह्माणी की
अद्‌भुत प्रतिभा,
दानव संहारिणि दुर्गा की
रौद्र भंगिमा,
अविचल व्रत धारिणि
महातपस्विनि पार्वती की
पावनता की
पुंजीभूत शक्ति
नारी

इस मर्त्य धरा पर

साक्षात् देवि है।

जीवन की पहली कक्षा में

भोली-भाली

निश्छल-निष्कलुष

सृजन की दीपशिखा-सी

मन्दस्मिति धारिणि कलिका-सी

पावनता सरिता में मज्जित

नारी

एक बालिका है।

छवि का लहराता आँचल

यौवन के तन पर डाले

शनैः शनै

मंथर गति से

जीवन के पथ पर

चरण बढ़ाकर

मादकता से भरे

मुग्ध नयनों से

प्रणय पंथ पर

प्रिय को

प्रेमामृत पान कराने वाली

प्रस्फुटित कमल-सी

रूप गर्विता

नारी

एक युवती है।

माघ, पूस की

ठिठुरन कंपन भरी रात में

ात झेलती
ा से भीगे

े

देख
ा
गी

ा परिभाषा

*

विश्वात्मन्

मै शुद्ध बुद्ध
चेतन अनन्त,
मै अजर अमर
मै तेजवन्त,
मेरी आभा से उद्भासित
यह दिग्-दिगन्त।

सूर्य चन्द्र
तारक मण्डल
सरिता, नद, निर्झर
हिम अँचल,
यह दिवा रात्रि
यह सान्ध्य काल
मेरी इंगित पर
संचालित
क्रीड़ारत

उत्तुंग शिखर
सागर वक्षस्थल
गहन घाटियाँ
विस्तीर्ण धरातल
मरुथल, पठार
गगनांगन
मेरे स्वरूप का
अभिव्यंजन।

षड्ऋतु नर्तन
कलिका की मुस्कान
विहग कल कूजन
उन्चास पवन
गर्जन तर्जन
ज्वालामुख विस्फोटन
भीषण भूकम्पन
मेरी इच्छा का ही
प्रस्फुटन ।

विश्व विमोहिनि
त्रिगुणमयी
चपला सी इस माया से
मै निर्लिप्त
किन्तु यह छाया माया
मेरे द्वारा ही विरचित ।

सागर लहरों से निर्मित
लहरे सागर में मज्जित
मै जग में हूँ
जग मुझ में है
मै ब्रह्मरूप
विश्वात्मन् ।

*

संघर्ष कहानी

अये चट्टान !
रुक्षता शुष्कताभरी चट्टान ।
यहाँ क्यो लेटी है तू म्लान ?
कल तक
अपने नीरुज तन में भी
तू विभोर
आज बन गई
क्यों वज्रादपि कठोर ?
सचमुच मैं
कल अति कोमल थी
मेरी रग-रग में
मृदुता लहराती थी
मै मलय पवन से
अठखेली करती थी ।
तो क्या फिर मानव
कष्टो की छाया से भी
डरने वाले मानव
मैं तुम्हें सुनाऊँ
अपनी संघर्ष कहानी ?
जब मैं दुःख दैन्य
जग ज्वाला से अत्यन्त दूर
सुख सरिता मे रहती थी
निशि दिन निमग्न
तो यह परिवर्तन
यह क्रूर ईर्ष्या भरा
विकट परिवर्तन
देख भला कैसे सकता था
मेरे उस सुख वैभव को !

क्षण में ही क्या हुआ ।
इसका ताडव नर्तन
लेकर निर्मम कटु दशन
प्रारंभ हो गया
घनघोर भयंकर गर्जन
मचा दिया
मेरे सुखमय जीवन मे
इसने रंग भग
तोड़ दिए मेरे वे
कोमल सुकुमार अग ।
हाय ! उजाड दिया इसने
मेरा वह उपवन
आज बन गया
मेरा स्वरूप
नीरस निर्जन ।
मुझे बनाया है कठोर
इसके झंझावातो ने,
मुझे बनाया गतिविहीन
इसके आघातों ने ।
मानव !
यद्यपि मैं
निश्छल, नीरव और मूक हूँ
फिर भी
रखना ध्यान
मं निष्प्राण नहीं हूँ ।
मेरे अन्तस् में प्रवहमान
स्निग्ध, विमल, शीतल जल,
जिसमे उर का आदोलन
चलता रहता है प्रतिपल

जीवनधारा

ऊबड़ खाबड़
इस धरती पर,
टेढ़ी मेढ़ी
जीवन धारा,
जैसी भी बहती है
उसको वैसा ही बहने दो।
उसकी असीमता को
सीमा में मत बाँधो,
उसके यथार्थ को
आदर्शों मे मत फाँसो,
उसकी गति का अवरोधन
रिहन्द का बाँध
नही कर सकता,
इसके स्वरूप का शोधन
नीति का जाल
नही कर सकता।
इसलिए उसे
उजियारी अँधियारी
कंकरीली पथरीली
राहों पर
स्वेच्छा से चलने दो।

*

उस कवि शिव को भी देखो

जड़ता की धरती से बहुत दूर
कवि बहता है भावों के सागर में
लहरों से चुप चुप बातें करते करते
कवि जाता है सागर की गहराई में
तट पर खड़ा हुआ दर्शक यह संसार
बात गहराई की कैसे सुन सकता ?
कवि की कविता का मूल्यांकन जड़ जगत नही कर सकता ।

भावों के दुर्गम हिमशैलो पर,
कवि जीवन विगलित होता है ।
युग की भीषण चट्टानों से,
कवि का चेतन टकराता है ।
मैदानों से है जिस जग को प्यार
घात चट्टानों की वह कैसे सह सकता ?
कवि की कविता का मूल्यांकन जड जगत नही कर सकता ।

कवि रोता है, कवि आकुल होता है,
जब जग के आँसू बहते है ।
कवि हँसता है, हँस-हँस कर गाता है
जब रोते फूल विहँसते है ।
अपने सुख-दुःख से हँसने-रोने वाला संसार
उस कवि की करुण कहानी कैसे सुन सकता ?
कवि की कविता का मूल्यांकन जड़ जगत नहीं कर सकता ।

गहन रात्रि के नीरव स्वर में,
सारा जग जब सो जाता है ।
लक्ष्मण बनकर कविता धनु से
कवि तब भी जग की रक्षा करता है ।
स्वार्थ निशा में लीन मलिन संसार
जागरण महिमा का गायन कैसे कर सकता ?
कवि की कविता का मूल्यांकन जड़ जगत नही कर सकता ।

अमृत को, मदिरा को तो जग पी जाता,
पर विष की ओर देखने में भी घबराता ।
आँखें खोल अरे उस कवि शिव को भी देखो
जो पीकर विष घट नीलकंठ बन जाता ।
अमृत के मदिरा के प्यालों से जिस जग को प्यार
भला वह विष का आस्वादन कैसे कर सकता ?
कवि की कविता का मूल्यांकन जड़ जगत नही कर सकता ।

*

प्रभु ! नई कविता सिखा दो

आज तक पढता रहा गुनता रहा मै
भाव कविता का प्रमुख है तत्त्व,
किन्तु नव आलोचना अब कह रही है
भाव में कुछ भी नही है सत्त्व ।
सोचता हूँ शब्द की ही शरण लूँ
चल रहा है शब्द के अस्तित्व से भी द्वेष,
द्वेष के परिवेश से परिचय करा दो ।
प्रभु ! नई कविता सिखा दो ॥
रस सुधा का पान पाठक कर सकें
काव्य प्रणयन का यही उद्देश्य है,
सरलता से हृदय मंथन कर सके
काव्य प्रतिभा की यही पहचान है ।
किन्तु नव आलोचना की माँग ही कुछ और है
अर्थ के सारल्य से, रस नाम से भी वैर है,
तो मुझे रस वैर विष पीना सिखा दो ।
प्रभु ! नई कविता सिखा दो ॥
आदेश हो आशीष हो यदि आपका
ईडियट बन ईलियट के चरण चिन्हों पर चलूँ,
एज़रा की बात क्या संकेत हो यदि आपका
जेबरा के साथ दिन रात तृण चारण करूँ ।
पूर्व में पछुआ हवा यह चाहती है
भाव की अर्थी उठे औ' बुद्धि का शासन चले,
बुद्धि का अनुचर मुझे भी तो बना दो ।
प्रभु ! नई कविता सिखा दो

*

निज दर्शन

सूरज, पवन
अनल से दीक्षित
मेरी आँखें
भेदभाव के बिना
देखती रहती सारे जग को,
देख देखकर थक जाती वे
माटी से लेकर मुक्ता को,
चींटी से लेकर हाथी को,
राई से लेकर पर्वत को,
धरती से लेकर सागर को,
याचक से लेकर दाता को,
दुर्जन से लेकर सज्जन को।

पर कैसी मेरी यह सीमा ?
कैसी प्रभु तेरी यह लीला ?
नही देख पाती वे पलभर
निज को, अपने मुख मंडल को,
कह भी पाती नही किसी से
अपने अन्तर की पीड़ा-
'निज को देखे बिना
जगत का सारा दर्शन
व्यर्थ, अपूर्ण, अतात्त्विक।'
इन आँखों की
व्यथा वेदना समझी
पर दुखकातर, करुणाविगलित

निश्छल मन, सत्याराधक
दर्पण ने केवल
जिसने सच्चा साथी बनकर,
जिसने निर्मल साक्षी बनकर,
उन ऑखो को मिलवाया
अपनी ऑखों से,
अपने आनन के मानचित्र से,
उस पर अंकित हाव भाव से,
हास अश्रु से,
स्वर व्यंजन से
अक्षर अक्षर, मात्रा मात्रा
निज दर्शन,
आत्मालोचन हित ।

*

बावरा मन

ज्ञान ने, अध्यात्म ने
धारणा ने, ध्यान ने
शम दम, यम नियम
प्राणायाम, प्रत्याहार ने
बहुत रोका, बहुत टोका
बहुत समझाया बुझाया
बावरे मन को
वह न घूमे
वह न भटके
निष्प्रयोजन व्यर्थ ही
गेह अपना छोड़कर
मैदान में, प्रासाद मे
सड़कों, पहाड़ो, जंगलों में
कदराओ, उपवनो औ' घाटियो मे
निर्झरो, नदियों, सरों औ' सागरों मे ।
किन्तु वह स्वच्छन्द, यायावर, सिरफिरा
अक्खड़, हठी, अड़ियल महा
माना कहाँ ?
अनसुनी करता रहा
हर सीख की, उपदेश की
नीति की, आदर्श की
वह नही है चाहता
सबल, दिशा निर्देश
किसी का भी
इसलिए मै सोचता हूँ

व्यर्थ है उसको सिखाना औ' पढ़ाना
व्यर्थ उसको राह पर अपनी चलाना
घूमने दो, देखने दो, चलने दो उसे
वह जहाँ चाहे ।
बोल कर तुम
मत बनो अवरोध उसके पथ पर
पथ स्वयं उसको सिखाएगा
हर चोट का, हर दर्द का
अनुभव स्वय उसको सिखाएगा
वह चलेगा, वह गिरेगा, फिर चलेगा
इस तरह गिर गिर सदा चलता रहेगा ।

*

कोमल विश्वास

भावना गर्भ संभूत
सद्य जात कोमल विश्वास
माँ की गोद में
किलकारी भरते हुए
अबोध शिशु की तरह
जब अपना सहज उल्लास
व्यक्त करता है,
कितना स्पृहणीय लगता है !
कल कल छल छल करते हुए
प्रसन्नचित्त निर्झर की भाँति
हमारी चेतना भूमि पर
जब वह सचरण करता है,
कितना चित्ताकर्षक लगता है !
प्रस्फुटित प्रमुदित
प्रसून की तरह
डाल पर झूम झूम कर
जब वह इतराता इठलाता है,
कितना मनमोहक लगता है।
वही हर्षोल्लसित विश्वास
जब छल प्रपंच कपट के काँटों से
बीधा जाता है,
ईर्ष्या, द्वेष, क्रूरता के कंकडों, पत्थरों से
आहत किया जाता है,
उसका लहूलुहान रूप
कितना कारुणिक लगता है !
पाशविक प्रहारों से
जब उसकी

कोमलता, सुन्दरता, मनमोहकता
विनष्ट होती है,
धूल धूसरित होती है.
अपनी कठोरता कुरूपता में
अट्टहास करता हुआ
वह कितना वीभत्स हो उठता है
अन्तर्ज्वाला से
अहर्निशि धधकता हुआ,
सर्वग्रासी गगनस्पर्शी
उन्मत्त लपटों को
चतुर्दिक
वायु मंडल में फेंकता हुआ,
रौद्र रूप
वह कितना संहारक लगने लगता है
भूल जाता है वह
प्यारी प्यारी लोरियाँ,
नाना, नानी की कहानियाँ,
आनन्द की, सौन्दर्य की
उफनती हुई नदियाँ,
प्रेम पगी रस भरी बतियाँ,
उसे तो सुनाई देता है
केवल रुदन, चीत्कार, हाहाकार
जो किसी छोटी दुर्घटना का
परिणाम नहीं है.
भावना की सुकोमल देह पर
वज्रपात हुआ है,
उसका स्वर्णिम संसार उजड़ा है।

*

अभिशप्त लोक

जो शरीर
नश्वर क्षणभंगुर,
जल के
लघु बुद बुद सा
अस्थिर,
सकल व्याधि
विपदाओं का घर,
राग भोग
क्षयगामी सत्वर,
रक्त मांस
मज्जा का मंदिर,
वात पित्त
कफ पूरित निर्झर
मानव !
समझ रहा तू
उस शरीर को
उस पुतले को
उससे जुड़े जगत को
शायद,
शाश्वत, नित्य अमर।
इसीलिए
एकान्त भाव से
उस पर आस्था,
उसके प्रति
सम्पूर्ण समर्पण
अर्चन वन्दन
नित नूतन शृंगार विलक्षण

करता रहता निशि दिन,
इसीलिए तू
उसके ऊँचे अह शृंग को
अभिवादन करने को
उसके मिथ्या गौरव का
ध्वज फहराने को
अत्याचार, अनाचारों के
शिखरो पर
करता आरोहण,
इसीलिए तू
द्वेष, ईर्ष्या, हिसा
झूठ, कपट, पाखड
कटुता, निर्दयता, शोषण के
तीक्ष्ण शरों से
मानवता को
करके क्षत विक्षत
स्थापित करता
दानवता शासन,
इसीलिए तू
जीवन शोभा
गरिमा महिमा
श्रेय प्रेय
दिव्यता भव्यता को
करके पूर्ण तिरस्कृत,
दुर्गन्धित, मालिन्यपूर्ण
वीभत्स, घृणास्पद
कुत्सित, कलुषित
अभिशप्त लोक का
करता नित अभिनन्दन

*

मनहूस शून्य

कहाँ गया
वहा चित्ताकर्षक
अनुपम जीवन्त दृश्य,
वह रूप राशि
अद्भुत विधान
आकर्षक सज्जा
विविधाभूषण
ललित वेश विन्यास ?
अभी अभी तो देख रहा था
हरित भरित वसुधा का
प्रमुदित कण कण
मनहर बेलि वितान
हर्षोल्लसित सुमन
आनन्दमग्न खग कुल कूजन
रसिक शिरोमणि मधुकर गुंजन
नाना रेखाओं रंगों में अभिव्यक्त
नयनाभिराम वह चित्र जगत
उस चित्रकार की
दिव्य कल्पना का सम्मूर्तन ।
दूर क्षितिज पर
किरण जाल फैलाता सूरज,
मुक्त कुंतला धरती
अपलक दृग पर्वत
शान्त प्रसुप्त झील
धावित सरिता
एकाग्रचित्त तापस तरु
क्रीड़ारत स्वच्छन्द मेघ
सागर उर उद्वेलन

लहरों का अविरल नर्तन
जल प्रासादों में
मीन मकर परिवार
पर्यटन विचरण,
तटवासी उस जीव जगत का
सुख, दुःख, हास अश्रु
राग द्वेष, प्रेम घृणा
संघर्ष चेतना
जिर्जीविषा
भावान्दोलन,
मन की आँखो में पलते
वे लाड़ले स्वप्न
वे इन्द्रधनुष
कल्पना अप्सरी की ऊँची उडान,
दारिद्र्य जनित चिन्ता का भैरव नर्तन
भूखे शिशुओं का रोदन क्रदन
शोषण उत्पीड़न का दंशन ?
क्षण भर के ही चक्रवात मे
जल प्लावन मे
कहाँ विलीन हो गया
ओ प्रकृति सुन्दरी
तेरा वह मधुमय स्वरूप ?
ओ चित्रकार
तेरा वह जीवन्त दृश्य ?
शेष रहा क्या
मात्र एक मनहूस शून्य
जो महानाश के ताने बाने से
बुन रहा भयकर सन्नाटा !

*

मुद्रा परिवर्तन

मुद्रा के
परिवर्तन के साथ साथ
स्वरूप मे
परिवर्तन आने से
आसक्ति के प्रतिशत में
मोह के प्रतिमान मे
अन्तर आया है ।
अपने अपने युग में
हर मुद्रा का मूल्य है
फिर भी न जाने क्यों
सोने से चाँदी
चाँदी मे कांसे
कांसे से कागज़ की मुद्रा मे,
उसके स्वरूप मे
परिवर्तन आने से
आसक्ति के प्रतिशत मे
मोह के प्रतिमान में
अन्तर आया है ।

*

प्रश्न चिन्ह

ज्ञात नहीं
वह कौन सी भाषा बोलता है,
कौन सी लिपि में लिखता है,
किसको सम्बोधित करता है,
क्या सम्प्रेषित करता है,
किसकी सुनता है,
कब सुनता है,
क्या देखता है,
देखकर वह क्या कहता है ?
क्या उसकी सर्वज्ञता
शक्ति सम्पन्नता
सार्वभौमिकता
मात्र पढ़ने लिखने
और बोलने का विषय है ?
सब कुछ देखकर भी
सब कुछ सुनकर भी
सब कुछ जान कर भी
वह विचलित क्यों नही होता ?
न जाने कितनी
मर्मान्तक, हृदयविदारक
वीभत्स, घृणास्पद
क्रूर, विकट, लज्जास्पद
घटनाएँ देखकर भी
वह चुप रहता है
अनदेखी अनसुनी करता है
और अपनी विराट् प्रभुता पर
प्रश्नचिन्ह लगवाता है

*

विस्थापन

भयंकर बीहडों में
ऊँचे पहाडों में,
लहलहाते खेत में
तपते मरुस्थल मे,
मैदान मे,
उद्यान में,
नदी नाले के किनारे,
या कि घूरे पर
पौधा जहाँ जो भी उगा है
वह वही पर
स्वस्थ, सुन्दर, ठीक है।
तुम नही छेड़ो उसे
ज्ञान के, विज्ञान के
सौन्दर्य के अभिमान से,
तुम न खेलो खेल
उसकी अस्मिता से, चेतना से
मत उखाड़ो तुम उसे
उसकी जड़ों से,
मत सजाओ तुम उसे
नूतन प्रसाधन, परिधान से
यदि तुम नही मानोगे
वह प्राण देगा त्याग अपने,
यदि जियेगा भी
घुट-घुट जियेगा,
तिल तिल गलेगा,

बस आँसुओं को ही
सदा पीता रहेगा ।
फिर कह रहा हूँ
विस्थापन नही उसका उचित है ।
जिस परिवेश में
वह जन्मा, पला है,
उसी मे व्यक्तित्व उसका
रक्षित, प्रफुल्लित है ।
हाँ, दृष्टिपथ निज साफ रखो
देखने उसको रहो तुम
किन्तु, उसकी जगह पर,
वह वही उन्मुक्त होकर
मुस्कुराएगा, खिलखिलाएगा
गायन करेगा
नर्तन करेगा,
बचपन, जवानी औ बुढ़ापा
सबको जिएगा,
और जब आयु होगी पूर्ण उसकी
पचभूतों मे मिलेगा ।
यह सनातन चक्र है
चलता रहेगा
वह वही पर
फिर जिएगा
फिर मरेगा
और यह जीवन मरण का
क्रम सतत चलता रहेगा ।

*

चिर अन्वेषी मन

कैसा है वह शिल्पी ?
उसका रूप रंग ?
दीखता चतुर्दिक्
जिसकी रचना का शिल्प
कल्पना वैभव
सौन्दर्य दृष्टि विस्तार
कहाँ रहता वह कृतिकार ?
अहर्निशि रचना मे
जो रहता है तल्लीन
वह गुडाकेश, वह शिल्पकार
कब करता विश्राम ?
चर अचर जगत मे
क्यो असंख्य कृतियाँ
वह निर्मित करता ?
क्यो सृजन, ध्वस का
ध्वस, सृजन का
पुन· पुन.
वह चक्र चलाता ?
रचना की यह कैसी क्रीड़ा
कैसा सुख आनन्द ?
हर कृति निर्मिति के पीछे
उसका क्या दृष्टिकोण
क्या भाव बोध
क्या उद्देश्य, प्रयोजन ?
खोज रहा युग युग से
इन प्रश्नों का उत्तर
चिर अन्वेषी मानव मन ।

*

दो शादियाँ

भाँवरें डालकर
दुलहिन ले आना
शादी नहीं
शादी की नकल है।
दुनियाँ मे आते ही
सबसे पहले
नकल नहीं
तुम्हारी शादी हुई थी
ज़िन्दगी से,
अभी एक शादी बाकी है
लेकिन तय हो चुकी है
वह होगी
ज़िन्दगी के बाद
उसकी सगी बहन
मौत से।

प्राण ! तुम कविता हो मेरी

कोकिला का सुनकर कूजन
ध्यान में करता आवाहन,
प्रेम जल से कर मधु सिंचन
हृदय का देता सिंहासन,
मच रही अन्तर्जग मे धूम
भावना रानी हो मेरी ।
प्राण ! तुम कविता हो मेरी ।।

देख कलिका की मधुरिम छवि
बन गया मन ही नन्दन वन,
तुम्हारी स्मृति सुरभित वायु
ला रही तन में स्पंदन,
गा रहा हर कण हर पल गीत
साधना साथिनि हो मेरी ।
प्राण ! तुम कविता हो मेरी ।।

छोड जग का सारा व्यापार
तुम्हारे चिन्तन में हूँ लीन,
कर रहा है मानस किल्लोल
बन गया ध्यानोदधि में मीन,
गूँजता अणु अणु में संगीत
कल्पना स्वामिनि हो मेरी ।
प्राण ! तुम कविता हो मेरी ।।

भावना पथ से आकर तुम
कल्पना में रहती हर पल,
बुद्धि वीणा को दे झकार
हृदय में गाती तुम अविरल,
भाव कहता है बारबार
चेतना देवी हो मेरी।
प्राण ! तुम कविता हो मेरी।

हृदय के उपवन मे जाकर
खेलता है जब मेरा मन,
जगत माली निष्ठुर निर्मम
छीन लेता भावुकता धन,
किन्तु आत्मा का है विश्वास
प्रेम पथ दर्शिनि हो मेरी।
प्राण ! तुम कविता हो मेरी।

*

भाव का शृंगार करना चाहता हूँ

तोड़ कर बन्धन धरा के
फोड़ कर प्याले सुरा के

मै सुधा का पान करना चाहता हूँ
भाव का शृगार करना चाहता हूँ।

तीव्र स्वर भाता नही
राग कटु आता नही

कोकिला का गान सुनना चाहता हूँ
भाव का शृगार करना चाहता हूँ।

मन के कालिदी-सलिल मे
लहर के चचल सदन में

चाँद का ससार रचना चाहता हूँ
भाव का शृगार करना चाहता हूँ

ये महल, ये अट्टालिकाएँ छोड़कर
उन्माद गुजित थे दिशाएँ भूलकर

शान्ति की कुटिया बसाना चाहता हूँ
भाव का शृगार करना चाहता हूँ।

*

याद तुम्हारी आती है

मन के नीरव वातायन से चुपके चुपके याद तुम्हारी आती है ।
उर के निर्मल शून्य गगन में सावन घटा घहर जाती है ।।

छा जाते हैं श्यामल बादल रो रो व्यथा कथा कहते,
उमड़ घुमड़ कर सिसक सिसक कर पीड़ा अभिव्यजित करते ।
बूँदो मे प्रकटित होती हैं उनकी रिमझिम रिमझिम बाते,
विद्युत की भाषा में लिखते पीड़ित मन की अनगिन घाते ।
वसुधा की ऑखों से हर पल जलधारा बहती रहती है,

मन के नीरव वातायन से चुपके चुपके याद तुम्हारी आती है ।
उर के निर्मल शून्य गगन मे सावन घटा घहर जाती है ।।

सागर उर उद्वेलित होकर लहरों में नित मुखरित होता,
उनके अविरत स्पदन मे भावाकुल मन व्यजित होता ।
टकराती रहती वे निशि दिन पथ की निर्मम चट्टानो से,
अपना दुख वे कहती रहती मूक बधिर तटबन्धो से ।
उनका मर्मस्पर्शी स्वर सुन मेघावलि निशि दिन रोती है,

मन के नीरव वातायन से चुपके चुपके याद तुम्हारी आती है ।
उर के निर्मल शून्य गगन में सावन घटा घहर जाती है ।।

*

प्रेम मै करता रहूँगा

चले झझा या प्रभजन
दीप जलता ही रहेगा,
गगन का अभिशाप भी हो
ज्वार उठता ही रहेगा,
मेघ गर्जन करे निशि दिन
पर पपीहा रट लगाए,

गान मै गाता रहूँगा ।
प्रेम मै करता रहूँगा ।।

सिन्धु में उठती लहर जो
वह उन्हे कैसे दबाए ?
डाल पर कलियॉ खिली जो
वह उन्हें कैसे छिपाये ?
भाव की अभिव्यक्ति कब गेके, रुकी है
अवरोध सम्मुख है सतत सकल्प उसका,

गान मै गाता रहूँगा ।
प्रेम मै करता रहूँगा ।।

तमस के परिवेश में भी
रवि सदा चलता रहा है,
वह उषा से मिलन के हित
लक्ष्य उन्मुख ही रहा है
रोके भले ब्रह्माण्ड चाहे
उसका अटल निश्चय नियम है,

गान मैं गाता रहूँगा ।
प्रेम मै करता रहूँगा ।।

*

एक बार देख लूँ

एक बार देखकर हज़ार बार देख लूँ ।
हजार बार देखकर एक बार देख लूँ ।।

दृश्य के द्वार पर ये नयन जब गए
दौडकर दृश्य ने बॉह में ले लिया,
प्रीतिमय मिलन हुआ चित्र भी खिच गया
चित्र ही खिचा नहीं रंग भी भर गया,
चाहती है उगलियॉ चित्रकार की यही-

एक बार खींचकर हज़ार बार खीच लूँ ।
हज़ार बार खीचकर एक बार खीच लूँ ।।

फूल को देखकर हाथ ही मचल गया
हाथ को देखकर फूल भी हॅस दिया,
मौन ही सही मगर प्यार तो हो गया
प्यार के प्रवाह में होंठ भी बह गया,
बह गया मगर अभी चाहता है वह यही-

एक बार चूम कर हजार बार चूम लूँ ।
हज़ार बार चूम कर एक बार चूम लूँ ।।

जिदगी के खेल में हार हो या जीत हो
अश्रु परम मित्र हो, हास परम शत्रु हो,
अंग अंग में भले थकान की पुकार हो
दर्शको की दृष्टि में व्यंग्य का प्रहार हो,
हो प्रहार ही भले चाहता है मन यही-

एक बार खेल कर हज़ार बार खेल लूँ ।
हजार बार खेल कर एक बार खेल लूँ ।।

एक बार देखकर हज़ार बार देख लूँ ।
हजार बार देखकर एक बार देख लूँ

अन्दर से सूना हूँ

बाहर से मै भरा बहुत हूँ
सजा बहुत हूँ
अन्दर से सूना हूँ।

बादल बनकर नभ में मै छा जाता हूँ
धरती के कण कण की प्यास मिटाता हूँ
पर खुद मै प्यासा हूँ।
बाहर से मै भरा बहुत हूँ...

जगमग दीपक-सा जलता हूँ
जग को ज्योतिर्मय करता हूँ
लेकिन मैं तम में हूँ।
बाहर से मै भरा बहुत हूँ....

विष पीकर अमृत देता हूँ
पीड़ा सह स्मिति देता हूँ
मै भी तो याचक हूँ।
बाहर से मैं भरा बहुत हूँ...

वैसे तो हँस भी लेता हूँ
गीतों को गा भी लेता हूँ
पर मै व्यथा उपासक हूँ।
बाहर से मैं भरा बहुत हूँ....

कहने को तो सब जग अपना
धरा गगन सागर भी अपना
फिर भी मैं एकाकी हूँ।
बाहर से मैं भरा बहुत हूँ...

*

बंधन भी है स्वीकार मुझे

आग भरा मै सूरज हूँ,
नभ मर्यादा का ध्यान मुझे ।
ज्वार भरा मै सागर हूँ,
तट मर्यादा का ध्यान मुझे ।
माना असीम से नाता है,
सीमा भी है स्वीकार मुझे ।
बंधन भी है स्वीकार मुझे ।।

कल कल करके निर्झर बहता,
गर्जन तो कभी नही करता ।
पी पी कहकर चातक रटता,
भीषण उद्घोष नही करता ।
ध्वनि करना तो है बुरा नही,
स्वर सीमा है स्वीकार मुझे ।
बधन भी है स्वीकार मुझे ।।

जीवन घर में तुम आए हो,
तो दरवाज़ो को मत भूलो ।
आना जाना है मना नही,
पर राहों को तो मत भूलो ।
चलना फिरना होता रहता,
रुकना भी है स्वीकार मुझे ।
बंधन भी है स्वीकार मुझे ।

कल्पना लोक मे रहता हूँ,
धरती से भी है मोह मुझे ।
मैं भावों में बह जाता हूँ,
जग के यथार्थ से मोह मुझे ।
मुसकानों से है बहुत राग,
क्रंदन भी है स्वीकार मुझे ।
बधन भी है स्वीकार मुझे

*

गुनगुनाते रहो गीत बन जायेंगे

गुनगुनाते रहो गीत बन जाएँगे ।
स्नेह देते रहो मीत बन जाएँगे ।

गीत क्या भाव की बाँसुरी है अमर,
तान जिसकी सदा मोहती विश्व को ।
वेदना के अधर पर सिसकती हुई,
आँसुओं में डुबोती रही सिन्धु को ।
अन्तर में समाया हुआ शून्य है,
साँस सरगम बजाती नचाती उसे ।
पीर मन मे बसाये हर भाव है,

गुनगुनाते रहो गीत बन जाएँगे ।
स्नेह देते रहो मीत बन जाएँगे ।

मीत क्या प्राणप्रिय प्रतिबिंब अपना,
बँटाता सदा जो हास को अश्रु को ।
देख चिंतित थकित जागरित मित्र को,
छोड़ देता स्वयं भी नींद विश्राम को ।
जग खड़ा लूटने को हर मोड़ पर,
प्रेम की आन पर वह लुटाता स्वयं को ।
चाहती मित्रता स्वार्थ बलिदान है,

गुनगुनाते रहो गीत बन जाएँगे ।
स्नेह देते रहो मीत बन जाएँगे ।।

*

गीत को मै कभी बेचता हूँ नहीं

हार मैंने किसी से है माँगे नही
भाव मैने किसी से खरीदे नही,
बीहड़ो में गया कटकों से मिला
फूल बेचो मैने पौध से यूँ कहा,
बात सुनकर अजब वह हँसने लगा
हाथ मे हाथ ले यूँ कहने लगा,
तोड़ लो फूल चाहे हजारों मगर
फूल को मै कभी बेचता हूँ नही।

गीत को मैं कभी बेचता हूँ नही।

प्राण की तान पर गीत मैने लिखे
प्रेम की आन पर गीत मैंने लिखे,
अन्न दाने लिए मै विहग से मिला
मैं खिलाऊँ तुझे गान मुझको सिखा,
शर्त जैसे सुनी खिलखिलाने लगा
यूँ परेशान क्यो समझाने लगा
तुम सीखो गगन या धरा पर कही
गान को मै कभी बेचता हूँ नही।

गीत को मै कभी बेचता हूँ नही ।।

वेदना ने सिखाए मुझे छंद है
यातना ने सिखाए अलकार है,
चाँदनी जब गगन में विहँसने लगी
खेलने को अवनि पर मचलने लगी,
चाँद को देखकर अश्रु बहने लगे
लालसा नेत्र उसको बताने लगे,
चाँद बोला कि तुम यूँ रोओ नही
चाँदनी को कभी बेचता हूँ नही।

गीत को मैं कभी बेचता हूँ नही

गीत मेरे सभी हैं अधूरे अभी

वेदना राग को इस हृदय बीन पर
कल्पना सीखती है बजाना अभी,
सोते हुए दुधमुँहे भाव को
भावना सीखती है जगाना अभी,
शारदा की मृदुल ऊँगलियो को पकड़
सीखता हूँ मै वर्णमाला अभी,
गीत मेरे सभी है अधूरे अभी ।

जिंदगी मे सफर कर रहा हर घड़ी
किन्तु मंजिल अभी तक मिली है नहीं,
पी रहा हूँ हलाहल के घूँट मै
पर सुधा तो अभी तक मिली है नही,
ज़िदगी से मोहब्बत तो है चल रही
पर शादी नही हो सकी है अभी.
गीत मेरे सभी हैं अधूरे अभी ।

ऑधियॉ क्या चले उन्चासो पवन
पैर मेरे नही रुक सकते कभी,
यातना से मुलाकात हो रोज़ ही
भाव मेरे नही मिट सकते कभी,
देखती है उषा सूर्य है चल दिया
पर छाया गगन मे नही है अभी,
गीत मेरे सभी है अधूरे अभी ।

*

गीत से भी मिलन है बहुत ही कठिन

गीत को चाहिए पीर की नित चुभन,
पीर बाज़ार में है मिलती नही ।
गीत को चाहिए आह की ज़िदगी,
आह दूकान पर है मिलती नही ।

चाहती वेदना है हृदय की तपन
गीत से भी मिलन है बहुत ही कठिन ।

चाँद को घर बुलाने के ही लिए,
रात ने साँझ से प्यार के पत्र भेजे ।
चाँद को बाँह में लेने के लिए,
सिन्धु ने ज्वार से प्यार के पत्र भेजे ।

चाहता प्यार भी है शलभ की जलन ।
गीत से भी मिलन है बहुत ही कठिन ।।

चाहता है बुढ़ापा जवानी मिले,
पर जवानी कभी लौट आई नही ।
चाहती जिंदगी है नही मौत को,
पर उसे जिंदगी रोक पाई नही ।

चाहती चाह भी है स्वयं का मरण
गीत से भी मिलन है बहुत ही कठिन ।

गीत अपने मैं तुम्हे कैसे सुनाऊँ ?

वेदना के भवन मे मै
मूक हो अब तक रहा हूँ,
अश्रु भीगे नयन से
जग ताप मै सहता रहा हूँ,
कटकों को फूल का ही
प्यार मै देता रहा हूँ,

हृदय की उस पीर को कैसे दिखाऊँ ?
गीत अपने मै तुम्हें कैसे सुनाऊँ ?

भाव रहते है हृदय मे
शब्द मे आते नही,
गगन के स्वच्छन्दचारी
अवनि पर आते नहीं,
चहचहाते हैं वहाँ
पर पास में आते नही,

गान उनका मैं तुम्हें कैसे सुनाऊँ ?
गीत अपने मै तुम्हें कैसे सुनाऊँ ?

पीर ने घर पर बुलाकर
आह से स्वागत किया,
यातनाओं के पलग पर
गरल का प्याला दिया,
भेट थी वह प्यार की
विहँस कर मैं पी गया,

स्वाद की कटुता भला कैसे जताऊँ ?
गीत अपने मै तुम्हें कैसे सुनाऊँ ?

प्यास मे सूखे अधर
हर कूप को मैने दिखाए
मोर बनकर पंख अपने
मेघ को मैने दिखाए
बूँद तो आई नही
नयन जल से भर गए

प्राण की उस प्यास को कैसे दिखाऊँ ?
गीत अपने मै तुम्हें कैसे सुनाऊँ ?

किस कदर मैं सस्ता बिका हूँ

मुसकुराती हुई वह कली क्या खिली
आ गया छोड़कर निज भवन ही भ्रमर,
सोचता था कली प्यार देगी उसे
वह पीकर सुधा हो सकेगा अमर।

अमरता के लिए मै मग हूँ।
किस कदर मै सस्ता बिका हूँ।।

भाव ने जिस तरफ भी इशारा किया
पैर मेरे उधर चल पड़े बेखबर,
फूल के गॉव को पैर ये जब चले
शूल ने ही सजाई हृदय की डगर।

उस हृदय की डगर पर गिरा हूँ।
किस कदर मै सस्ता बिका हूँ।।

दूर नभ से किसी ने पुकारा मुझे
छोडकर यह धरा मैं उधर चल दिया,
जानता जब नही कौन ध्वनि दे रहा
व्यर्थ ही मै उधर फिर क्यो बढ़ गया ?

अजानी ध्वनि धार में मै बहा हूँ
किस कदर मै सस्ता बिका हूँ।

प्रीति को देखने को नयन जब खुले
नीति के हाथ ने बद क्यों कर दिया ?
गा रहे भाव खग जो वहॉं डाल पर
पीजरे में उन्हे बंद क्यो कर दिया ?

काव्य मे छन्द बनकर लुटा हूँ
किस कदर मै सस्ता बिका हूँ।

*

मैं जन्म जन्म तक उसका आराधक हूँ

मुझ को नही प्यार अम्बर के तारों से,
मुझको नही राग स्वर्गिक अभिसारो से,
मै हँसता हूँ गाता हूँ झझावातों में,
मेरा परिचय नही मलय की मंद बहारो से ।
जिस धरती ने स्नेह लुटाया है मुझ पर,

मै जन्म जन्म तक उसका आभारी हूँ ।
मै जन्म जन्म तक उसका आराधक हूँ ।।

जीवन के इस भव्य महोत्सव में,
मै सघर्षो के आमत्रण पर आया हूँ,
मुझको चाह नही कोमल पर्यको की,
चट्टानो का आलिंगन करता आया हूँ ।
जिस वसुधा ने ममता बरसाई मुझ पर,

मै जन्म जन्म तक उसका आभारी हूँ ।
मै जन्म जन्म तक उसका आराधक हूँ ।।

गगनस्पर्शी प्रासादों की छाया को,
मै सदा सदा से ठुकराता आया हूं,
घास फूस की कुटिया ही मुझको प्यारी,
मै वैभव शिखरो से टकराता आया हूँ ।
जिस मिट्टी ने वरद हस्त रखा मुझ पर

मैं जन्म जन्म तक उसका आभारी हूँ ।
मैं जन्म जन्म तक उसका ——— हूँ ।

*

धरती पर आ जाओ

सुख समृद्धि के नदन वन में
भोग सुमन चुनते आए हो,
जग मथन से अमृत प्राप्त कर
युग युग से पीते आए हो,
आज दे रहा विष आमंत्रण थोड़ा सा पी जाओ।
गगन भवन में रहनेवालो धरती पर आ जाओ॥

रत्नजटित मणिमय फर्शो पर
चरण तुम्हारे डोले है,
रगबिरगे गुलदस्तो से
भाव तुम्हारे बोले है,
आज शूल की अभिलाषा है उससे भी मिल जाओ।
गगन भवन में रहनेवालो धरती पर आ जाओ॥

वैभव के उत्तुग शिखर पर
जलधर बन छाते आए हो,
उन्मादो के त्यौहारो पर
रसनिमग्न होते आए हो,
अवसादों के जन्मदिवस पर भी दर्शन दे जाओ।
गगन भवन मे रहनेवालो धरती पर आ जाओ॥

नभ के उन्नत कधो पर चढ़
अट्टहास करते रहते हो,
शोषित पीड़ित जन उर क्रदन
भला कहाँ तुम सुनते हो.
शोकमग्न मानवता का नीरव स्वर भी सुन जाओ।
गगन भवन में रहनेवालो धरती पर आ जाओ॥

*

धरती की प्यास मिटा ना पाए

जाने कितने इठलाते कजरारे बादल नभ पर आकर मडराए,
गरजे तरजे बहुत किन्तु वे धरती की प्यास मिटा ना पाए ।

सूरज ने उन बजारो को अपना विशाल आवास दे दिया,
फिर भी कहॉ रुके वे उसमे झलक दिखाकर चले गए ।
कैसा यह खिलवाड़ पवन का मृगछौनो को भ्रमित कर दिया,
वन वन में मारे वे फिरते घर आंगन से दूर हो गए ।

जाने कितने इठलाते कजरारे बादल नभ पर आकर मडराए,
गरजे तरजे बहुत किन्तु वे धरती की प्यास मिटा ना पाए ।

पृथ्वी तो चिर तृषित व्यथित हो मूर्च्छित पड़ी हुई है,
होगे वे जलधर पर प्यासो के तो काम न आए
वे पहने सुन्दर पोशाके पृथ्वी की चादर मैली पड़ी हुई है,
वे आनन्द शिखर पर विचरे वसुधा के दुख दूर न हो पाए ।

जाने कितने इठलाते कजरारे बादल नभ पर आकर मडराए,
गरजे तरजे बहुत किन्तु वे धरती की प्यास मिटा ना पाए ।

वे अपनी इच्छा के स्वामी कण कण तरसा कर बरसेगे,
प्यास किसे है व्यथा किसे है कब हिसाब इसका रख पाए ?
वे वैभव सागर मे डूबे बजर भू पर लहराऍगे,
जिस धरती के प्राण अधर में कब उसको जलकण दे पाए ?

जाने कितने इठलाते कजरारे बादल नभ पर आकर मडराए,
गरजे तरजे बहुत किन्तु वे धरती की प्यास मिटा ना पाए

*

तपन ही तो सहज सच है

तपन ही तो सहज सच है इस मरुस्थल का,
मत करो तुम बात उन पुरवा हवाओं की।

जल रहा हर कण यहाँ है द्वेष के अगार से,
छेडते तुम तान क्यों मधुमास की अभिसार की ?
देह टकराती यहाँ सूखी कटीली झाड़ियो मे,
याद क्यों लाते यहाँ शीतल सघन तरु छाँह की ?

तपन ही तो सहज सच है इस मरुस्थल का,
मत करो तुम बात उन पुरवा हवाओं की।

चिर तृषा ही चिर व्यथा है चमचमाती रेत में,
क्यो दौड़ता मन मृग यहाँ क्यों खोज है जल धार की ?
तमतमाते सूर्य का साम्राज्य है इस भूमि मे
रट लगाए क्यों पपीहा बादलों से स्वाति जल की ?

तपन ही तो सहज सच है इस मरुस्थल का
मत करो तुम बात उन पुरवा हवाओं की।

ओ पथिक चलना तुम्हें है इन बगूलों की डगर मे,
भ्रान्ति के इस लोक में क्यों कामना ऋजु मार्ग की ?
रेत तन में रेत मन मे रेत ही धरती गगन मे,
क्यों खोज इस परिवेश में है जल भरी उस आँख की ?

तपन ही तो सहज सच है इस मरुस्थल का,
मत करो तुम बात उन पुरवा हवाओं की।

*

जीवन सूना सूना लगता है

पुष्प पुष्प से पुलकित उपवन
मलयानिल भी बहता है,
पर कैसा यह ऋतु परिवर्तन
निशि दिन तन मन जलता है ?

एक तुम्हारे बिना पिता श्री,
जीवन सूना सूना लगता है ।

अब भी तरु तन गुंजित होता
खग कुल कलरव से,
किन्तु ब्रजेश्वर की वंशी बिन
ब्रज उर नीरव रहता है ।

एक तुम्हारे बिना पिता श्री,
जीवन सूना सूना लगता है ।

सूरज रोज जगाता सबको
नित चाँद सुलाता है,
विरह दग्ध उर कब सोता कब जगता
वह तो रोता रहता है ।

एक तुम्हारे बिना पिता श्री
जीवन सूना सूना लगता है

पृथ्वी के कण कण मे बिखरी
नित नूतन श्री सुषमा है,
किन्तु सुदर्शन मनमोहन बिन
वृन्दावन मरुथल दिखता है ।

एक तुम्हारे बिना पिता श्री,
जीवन सूना सूना लगता है ।

माना तन नश्वर क्षणभंगुर
आत्मा अजर अमर है,
पर जब तक है हृदय धड़कता
भाव कहॉ मरता है ?

एक तुम्हारे बिना पिता श्री,
जीवन सूना सूना लगता है ।

सागर वक्षस्थल पर अब भी
लहरे नर्त्तन करती रहतीं,
विधु मुख देखे बिना किन्तु
कब ज्वार उमड़ता है ?

एक तुम्हारे बिना पिता श्री,
जीवन सूना सूना लगता है ।

कर्म यज्ञ में प्राणि मात्र
आहुति देता है प्रतिक्षण,
पर तुम जैसा कर्मवीर
स्थितप्रज्ञ कहाँ दिखता है ?

एक तुम्हारे बिना पिताश्री,
जीवन सूना सूना लगता है ।

तृषित धरा की प्यास मिटाने
उमड़ घुमड़ बादल आते,
स्वाति बूँद हित चातक फिर भी
सदा तरसता रहता है ।

एक तुम्हारे बिना पिता श्री
जीवन सूना सूना लगता है ।

तिनका तिनका जोड़ जोड़ कर
नीड़ बनाया तुमने,
छोड उसे तुम कहाँ उड़ गए
नित वह खोजा करता है ।

एक तुम्हारे बिना पिता श्री
जीवन सूना सूना लगता है ।

यमुना वही वही गोकुल है
किन्तु कदम्ब कहाँ ?
किस शाखा पर बैठूँ गाऊँ ?
हर खग यही पूछता है ।

एक तुम्हारे बिना पिता श्री
जीवन सूना सूना लगता है

लो एकवर्ष और बीत गया

हमने रखवाली की रातदिन लुटेरे को रोक कहाँ पाए ?
जीवन तरु डाल का सुगन्धित एक फूल और टूट गया ।
लो एक वर्ष और बीत गया ।।

सारा आकाश वही पृथ्वी चाँद सूरज परिवार वही,
नर्त्तनरत सारे नक्षत्र फिर कैसे उल्कापात हो गया ?
लो एक वर्ष और बीत गया ।।

हम तो बस पथ के आराधक चरैवेति चरैवेति जान्ते,
व्याघ्र सर्प दस्यु मिले कई कोई नही विचलित कर पाया ।
लो एक वर्ष और बीत गया ।

फिर भी तो खोले हिसाब देखें क्या खोया क्या पाया ?
श्री गणेशाय नम लिखा मिला श्री काम सिद्ध नहीं हो पाया ।
लो एक वर्ष और बीत गया ।।

सागर अनुदार कब हुआ सदा लहरों को भेजता रहा,
ठिठक गए अपने ही पैर सिन्धु तल स्पर्श कहाँ कर पाया ।
लो एक वर्ष और बीत गया ।।

*

पावन गंगा हिन्दी

भारत माँ के दिव्यानन की
अद्वितीय शोभा हिन्दी,
कोटि कोटि जन उर की वाणी
भाववाहिका हिन्दी ।

देवगिरा के कर कमलों से
पालित पोषित हिन्दी,
युग मन का प्रक्षालन करती
पावन गंगा हिन्दी ।

गद्य पद्य दोनों क्षेत्रों में
प्रकटित उसकी रूप माधुरी,
अभिधा हो लक्षणा व्यंजना
मुखरित उसकी वाक्‌चातुरी ।

ओज प्रसाद माधुर्य गुणो से
भूषित प्रौढ़ नागरी,
नव रस के भावांबुधि में वह
क्रीडामग्न दुलारी ।

वह सामासिक प्रकृति युक्त
वह राष्ट्र ऐक्य का पाठ पढ़ाती,
अपने सुललित स्वर व्यंजन मे
राष्ट्रदेव को गान सुनाती ।

वह केशर की क्यारी से लेकर
सागर तट तक विचरण करती,
वह कामरूप कमनीय लोक से
कच्छ धरा तक आभा बिखेरती

सरलमना हिन्दी

सरलमना हिन्दी जन मन की
गाँठों को खोला करती,
वह सहज विमल निश्छल वाणी
अन्दर बाहर का भेद नही रखती।

साधुस्वभावा हिन्दी नहीं किसी का
स्वत्व अपहरण करती,
शिवरूपा वह पी लेती विष स्वयं
जगत को अमृत देती रहती।

हेम मुकुट अर्पित कर हिन्दी
हिमगिरि का अभिनन्दन करती,
भाव राशि अनुपम बिखेर कर
सिन्धु हृदय आन्दोलित करती।

हिन्दी, शब्द शब्द से भारत माँ का
आराधन अभिवादन करती,
आस्था के अक्षत चन्दन से
उसका अर्चन वन्दन करती।

हिन्दी, निर्धन की कुटिया से लेकर
महलों में भी विचरण करती,
सड़कों, खेतों, खलिहानों पर,
लोक हृदय स्पंदित करती।

हिन्दी, झंझावातो तूफानों मे
निर्भय खेला करती,
वह विरोध के अंगारों को
मुस्कानों से शीतल करती।

*

हिन्दी बालिका

हिन्दी बालिका बन गई रणचडी
चन्दवरदाई के आवाहन पर,
तरवर से तिरिया बन उतरी एक पहेली
अमीर खुसरो के इगित पर ।

हिन्दी सधुक्कड़ी बन कर घूमी
कबिरा के साखी सबद रमैनी पर,
कुहुकि कुहुकि जस कोयल रोई
जायसी रचित पद्मावत के पृष्ठों पर।

सूरदास के खजन नयनों मे
वह कृष्ण प्रभा बन निखरी,
तुलसी के मानस ऑगन में
वह राम छटा बन बिखरी ।

मीरां के तंबूरे पर वह
सांवरिया छवि सी छहरी,
वाग्विभूति बिहारी की वह
गंभीर घाव सी ठहरी ।

भारतेन्दु ने हिन्दी को उन्नत कर
निज हिय शूल मिटाया,
महावीर ने सरस्वती के जल से
उसका पावन अभिषेक किया ।

हरिऔध करों ने विधु वदनी का
नित नूतन शृंगार किया,
मैथिलीशरणने उस उपेक्षिता के हित
परम भव्य साकेत बनाया

हिन्दी प्रेमचन्द के उपन्यासों मे
शोषित समाज की व्यथा बन गई,
वह प्रसाद के नाट्य जगत में
भारत गौरव पहचान बन गई ।

आचार्य शुक्ल इतिहास ग्रन्थ मे
वह रत्नो की खान बन गई,
रत्नाकर के उद्धव शतक मे
प्रीति, राग की जीत बन गई ।

ध्वांत चित्त युग मनु के हित वह
सौम्य शान्त कामायनी बन गई,
ज्योति विहग कवि पन्त स्पर्श से
स्वर्णिम लोकायतन बन गई ।

हिन्दी सूर्यकान्त मणि की आभा
साहित्य शक्ति वरदान बन गई,
वह देवी मन्दिर की सात्विक पूजा
वेदना मूर्ति वह दीपशिखा बन गई ।

वह माखन के कविता कानन मे
एक फूल की चाह बन गई,
वह कुरुक्षेत्र में दिनकर की हुकार
उर्वशी के मन की झकार बन गई ।

बच्चन की मधुशाला की पावन हाला
आकुल अन्तर की रागिनी बन गई,
सुभद्रा के ओज भरे गीतों मे
झासी रानी की शान बन गई ।

*

आस्था दीपशिखा

घनघोर तमिस्रा जड़ता की काली आँधी
जब युग मानस में छाई हो,
आंजनेय से लेकर आस्था दीपशिखा
तुमको जग ऑगन जगमग जगमग करना है ।

छल प्रपच घननाद शक्ति से मर्माहत
प्रेमानुज विश्वास विमूर्छित त्रासग्रस्त है,
वज्रांग बली से ले सत शक्ति वेग तुमको
संकल्प द्रोण पर्वत से संजीवनी औषधि लाना है ।

बढ़ा रही निज मुख दानवता सुरसा
मानव भक्षण हित उद्यत क्षण प्रति क्षण,
अप्रमेय स्थूल शक्ति रखकर भी तुमको
सूक्ष्म रूप से दानवता भेदन करना है ।

धर्म राम से हो वियुक्त चेतना भूमिजा
शोकाकुल है रावण अशोक उपवन में,
महावीर से ले मानवता मुद्रिका तुम्हें
जग जननी के सम्मुख प्रस्तुत करना है ।

*

दुर्भेद्य मन

मानता हूँ मेरे चतुर्दिक घनघोर तम है,
कंटकों से भरा दुर्गम गहन पथ है,
पर मुझे विश्वास, दीपक कही तो टिमटिमाता है,
जो अमा की गोद में भी जागरण का गीत गाता है।

मानता हूँ बीहडों में वास करना मेरी नियति है,
हिंस्र पशुओं दस्युओं से भेट करना मेरी नियति है,
पर मुझे विश्वास, ध्रुव भी साधना मे लीन है,
पास जिसके भीषण प्रहारों के लिए दुर्भेद्य मन है।

जानता हूँ जीवन नही कोमल सुखद शैया सुमन की,
तीक्ष्ण शूलों से सुसज्जित देह की वह संगिनी है,
पर मुझे है भान, कोई पितामह हँसते हुए उस पर पड़ा है,
शरों को सहचर बनाकर आन पर अपनी अड़ा है।

जानता हूँ अर्थ के साम्राज्य में मै रह रहा हूँ,
नीति क्या है धर्म क्या है पूछता है कौन उनको,
किन्तु गाधी भी कहीं है, सोचकर यह चल रहा हूँ,
साध्य ही सब कुछ नही है देखना है साधनों को।

*

नेह भरी चितवन

दहक रहा द्वेषानल से इस जग का कण-कण,
पग पग पर भीषण विष वृक्ष खड़े है।
मुझे तुम्हारी नेह भरी चितवन ही काफी
जिससे मानस मे सौ सौ कमल खिले है।

कहने को मानवता का गुण गान यहाँ होता निशि दिन,
किन्तु दीखता चारो दिशि मे दानवता का विपुल राज्य है।
फैला हो जग मे कितना ही जल मालिन्य प्रदूषण,
किन्तु तुम्हारे प्रेम भरे नयनों में पावन गगाजल है।

भौतिकता की अंध गुफा में भटक रहा है युग मन,
आत्म ज्योति निर्झर दर्शन को तरस रहा है जन जन।
द्वेष ईर्ष्या आवर्तो में फॅसा हुआ है मानव-मन,
देख तुम्हारी दिव्य सौम्य भगिमा आल्हादित मेरा मन।

भरे पड़े है मगर मच्छ जीवन सरिता मे,
भरे पड़े है भँवर जाल जीवन सरिता मे
उन सबसे रह सावधान बहना जीवन सरिता मे,
अन्तर्दृष्टि तुम्हारी बने तरी जीवन सरिता मे ।

*

कवि परिचय

श्याम विद्यार्थी

१५ अगस्त, १९४? को कस्बा कमालगज, ज़िला फर्रुखाबाद (उत्तरप्रदेश) में जन्मे। प्रारंभिक शिक्षा कमालगंज और फर्रुखाबाद में। बी. ए बद्रीविशाल महाविद्यालय, फर्रुखाबाद से । उसके पश्चात् इलाहाबाद विश्वविद्यालय से अंग्रेज़ी साहित्य तथा हिन्दी साहित्य में एम ए.। साथ ही बंगला भाषा में डिप्लोमा। राजकीय सेवा के दौरान राजस्थान विश्वविद्यालय से पत्रकारिता में स्नातकोत्तर डिप्लोमा। इलाहाबाद विश्वविद्यालय में डी फिल. हेतु 'पन्त का छायावादोत्तर काव्य' विषय पर दो वर्ष तक शोध कार्य किया परन्तु अपूर्ण रहा।

शिक्षाप्राप्ति के उपरान्त इलाहाबाद से प्रकाशित अंग्रेजी समाचार पत्र 'नार्दर्नइंडिया पत्रिका' के सम्पादकीय विभाग में लगभग पाँच वर्षों तक कार्य। तदनन्तर संघ लोक सेवा आयोग, नई दिल्ली से चयनित होकर कार्यक्रम अधिशाषी के रूप मे आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रो पर तेरह वर्षो तक कार्य। उसके बाद छह वर्ष आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों पर सहायक केन्द्र निदेशक । पदोन्नति के पश्चात् गत तीन वर्षों से दूरदर्शन मे कार्यरत। सप्रति दूरदर्शन राँची में केन्द्र निदेशक।

सृजन की शुरुआत कविता से। लगभग तेरह वर्ष की आयु मे काव्याकुर फूटा। इलाहाबाद विश्वविद्यालय की यूनिवर्सिटी मैगजीन तथा हिन्दी विभाग की पत्रिका 'कौमुदी' से कविताओं का प्रकाशनारभ। सन् १९६९ मे आकाशवाणी इलाहाबाद मे प्रथम बार कविताओ का प्रसारण। उसके पश्चात् काव्य रचना की दृष्टि से लगभग बीस वर्षो का अन्तराल। १९९२ मे पुनः काव्य विस्फोट। तब से समय समय पर विभिन्न पत्र पत्रिकाओ मे कविताओं का प्रकाशन। प्रमुख पत्र पत्रिकाएँ जिनमें रचनाएँ प्रकाशित हुईं-पचेश्वर, मधुमती, दृष्टिकोण, सुजस, ओर, हरिगन्धा, साहित्य अमृत, भाषा-सेतु, साहित्यसंहिता, गुर्जर राष्ट्रवीणा, रूपाम्बरा, साहित्य भारती, राष्ट्रभाषा, इन्द्रप्रस्थ भारती, हिन्दुस्तानी, काव्यायनी, तुलसी मानस भारती, बात सामयिकी, राजस्थान पत्रिका, जे. वी. जी. टाइम्स, गुजरात वैभव, आज, प्रभात खबर, राँची एक्सप्रेस आदि उल्लेखनीय हैं। आकाशवाणी तथा दूरदर्शन के विभिन्न केन्द्रो से भी कविताएँ तथा भेंटवार्ताएँ प्रसारित।

काव्य रचना के अतिरिक्त काव्य समीक्षा, निबध, साक्षात्कार, सस्मरण आदि विधाओ में भी लेखन।

प्रकाशित कृति - 'आत्मज शब्द' (कविता संग्रह)

पत्राचार हेतु पता - **श्याम विद्यार्थी**
केन्द्र निदेशक
दूरदर्शन राँची,
रातू रोड,
राँची (बिहार) पिन कोड - ८३४ ००१

स्थायी सम्पर्क के बारे में कवि की पत्तियाँ है -

**मेरे जीवन के लिफाफे पर
जब भी आपको पता लिखने की ज़रूरत पड़े
इतना ही जानना काफी है
मैं कवि हूँ
कविता ही मेरा गाँव ——— जिला
प्रान्त और देश है**